इकाई 7 (ध्वन्यालोकः) प्रथम उद्योत, कारिका 1 से 4 तक

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 इकाई का शीर्षक– ध्वन्यालोक का प्रतिपाद्य विषय एवं काव्यस्यात्मा ध्वनिः

- 7.2.1 ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार परिचय
- 7.2.2 मङ्गलाचरणम्
- 7.2.3 ग्रन्थ का प्रयोजन एवं ध्वनिविषयक तीन विप्रतिपत्तियाँ
- 7.2.4 विप्रतिपत्तियों का विश्लेषण
- 7.2.5 अभाववाद एवं उनके विकल्पों का निरूपण
- 7.2.6 भाक्तवाद का निरूपण
- 7.2.7 अनिर्वचनीयतावाद का निरूपण
- 7.2.8 ध्वनिनिरूपण का प्रयोजन

7.3 ध्वनिसिद्धान्त की भूमिका

- 7.3.1 वाच्य एवं प्रतीयमान अर्थ का स्वरूपनिरूपण
- 7.3.2 प्रतीयमान का वाच्य से भिन्नत्व

7.4 सारांश

7.5 शब्दावली

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.7 बोध प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

- ध्वन्यालोक ग्रन्थ में वर्णित विषय–वस्तु को जान सकेंगे।
- ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे।
- साहित्यशास्त्रीयग्रन्थों में ध्वन्यालोक के वैशिष्ट्य एवं महत्त्व को बताने में समर्थ हो सकेंगे।
- ध्वनिसिद्धान्त के प्रादुर्भाव के बारे में जान सकेंगे।
- आनन्दवर्धन से पूर्ववर्ती आचार्यो के ध्वनिसंबन्धी–चिन्तन से परिचित हो सकेंगे।
- वाच्य एवं प्रतीयमान अर्थ के पार्थक्य को बता सकेंगे।
- ध्वनिविरोधी मतों को विश्लेषण करने में समर्थ हो सकेंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

7.1 प्रस्तावना

भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र से लेकर आधुनिक काव्यशास्त्र पर्यन्त संस्कृत साहित्यशास्त्र की एक सुदीर्घ परम्परा दृष्टिगोचर होती है। साहित्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्यों में भरत– भामह– दण्डी– उद्भट– वामन– रुद्रट– आनन्दवर्धन– कुन्तक– महिमभट्ट– राजशेखर– धनिक– धनञ्जय– अभिनवगुप्त– भोजराज– क्षेमेन्द्र– मम्मट– शारदातनय– विश्वनाथ– रामचन्द्र–गुणचन्द्र– सिङ्गभूपाल– पं.राजजगन्नाथ– विश्वेश्वरप्रभृति अग्रगण्य हैं। इनमें से ध्वन्यालोकग्रन्थ के कर्ता कश्मीर निवासी श्रीमान् राजानक आनन्दवर्धन का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इन्हें कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा से 'राजानक'नाम की सम्मानित उपाधि मिली थी। मूलतः वे कश्मीर के भट्ट ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम भट्टनोण था, यह बात कल्हण विरचित राजतरङ्गिणी ग्रन्थ से भी निश्चित होती है।

आनन्दवर्धन का समय नवीं शताब्दी ईसा का मध्यभाग अर्थात् 850 ई. के आस–पास माना जाता है। राजतरङ्गिणी के अनुसार वे अवन्तिवर्मा के राज्य के प्रतिष्ठित कवियों में से थे। यथा–

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।।

अवन्तिवर्मा कश्मीर के महाराज थे और उनका राज्यकाल सन् 855 ई. से 883 ई. तक था। इसके अतिरिक्त अन्य सूत्रों के आधार पर भी आनन्दवर्धन का काल निर्धारण सहज रूप से किया जा सकता है। जैसे – आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में उद्भट व वामन के मत को उद्धृत किया है, और दूसरी ओर राजशेखर ने आनन्दवर्धन का उद्धरण दिया है, इससे यह स्पष्ट होता है कि वे उद्भट के पश्चात अर्थात् 800 ई. के बाद और राजशेखर के समय 900 ई. के पूर्व हुए थे। अतएव आनन्दवर्धन का समय नवीं शताब्दी ई. का मध्यभाग अर्थात् 850 ई. के आसपास माना जा सकता है।

आपके पाठ्यक्रम में ध्वन्यालोक के प्रथम एवं चतुर्थ उद्योत निर्धारित हैं। जिसमें से प्रथम उद्योत के प्रारम्भिक कारिका– 01 से 04 तक का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। इन चार कारिकाओं में आनन्दवर्धनाचार्य के द्वारा ध्वनिसिद्धान्त की स्थापना, ध्वनिविरोधी मतों अभाववाद, भाक्तवाद एवं अनिर्वचनीयतावाद की विवेचना, वाच्य एवं प्रतीयमानार्थ का स्वरूप निरूपण, वाच्य से प्रतीयमान का भिन्नत्व निरूपण प्रभृति विषय निर्धारित हैं जिनका अध्ययन विस्तारपूर्वक आप इस इकाई में करेंगे।

7.2.1 ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार परिचय

आनन्दवर्धन का कर्तृत्व–

साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में अपनी बहुमुखी प्रतिभा, अद्वितीय पाण्डित्य गम्भीर विवेचना एवं नवीन चिन्तन के लिए वे सदैव विश्रुत रहेंगे। व्याकरणशास्त्र में जो स्थान आचार्य पतञ्जलि का है और वेदान्तशास्त्र में जो स्थान आचार्य शङ्कर का है साहित्यशास्त्र में वहीं स्थान आचार्य आनन्दवर्धन का है। उन्हें साहित्यशास्त्र का युगप्रवर्तक आचार्य माना जाता है। ध्वन्यालोक जैसे महनीयग्रन्थ की रचना कर उन्होंने साहित्यशास्त्र की दशा एवं दिशा को ही परिवर्तित कर दिया। अपनी प्रखर एवं मौलिक मेधा तथा प्रौढ पाण्डित्य के द्वारा साहित्यशास्त्र में ध्वनिसिद्धान्त की जिस तार्किक रीति से स्थापना

की वह सर्वथा स्तुत्य है। साहित्यशास्त्र के प्रकाण्ड आचार्य होने के साथ–साथ वे सहृदयकवि एवं महान् दार्शनिक भी थे। ध्वन्यालोक की लेखनशैली में दार्शनिकता का अद्भुत समावेश है। एक अनुभवी एवं गम्भीर दार्शनिक की भाँति उन्होंने ध्वन्यालोक में स्वयं अनेक सम्भावित प्रश्नों तथा ध्वनिविरोधी आचार्यों के मतों को उपस्थापित करते हैं, और पुनः सभी मत–मतान्तरों का जिस दार्शनिक शैली में उत्तर देते हैं वह अपने में विलक्षण है।

उनकी प्रमुख रचनाओं में ध्वन्यालोक, अर्जुनचरित, विषमबाणलीला, देवीशतक, तत्त्वालोक प्रभृति प्रमुख हैं। इनमें अर्जुनचरित और विषमबाणलीला के अनेक संस्कृत–प्राकृत छन्द 'ध्वन्यालोक' में उद्धृत हैं। 'देवीशतक' में यमक, श्लेष, चित्रबन्ध आदि का चमत्कार दिखाया गया है। 'तत्त्वालोक' एक दर्शनग्रन्थ है, अभिनवगुप्ताचार्य ने ध्वन्यालोक की लोचनटीका में इन ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

ग्रन्थपरिचय–

ध्वन्यालोक ग्रन्थ चार उद्योत में विभक्त है जिसका मुख्यप्रतिपाद्य ध्वनिसिद्धान्त है। आनन्दवर्धन ने इस ग्रन्थ में काव्यसमालोचना के लिए एक सार्वभौम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। ग्रन्थ के प्रथम उद्योत में काव्यस्यात्मा ध्वनि की स्थापना , ध्वनिविषयक विप्रतिपत्तियों में अभाववाद, भाक्तवाद एवं अनिर्वचनीयतावाद का विश्लेषण, ध्वनिनिरूपण का प्रयोजन, ध्वनिसिद्धान्त की भूमिका, वाच्य एवं प्रतीयमान अर्थ का निरूपण करते हुए प्रतीयमान की श्रेष्ठता का निर्धारण, अभाववाद के निमित्त विकल्पों का खण्डन, प्रतीयमान रस ही काव्य की आत्मा, ध्वनि का स्वरूप निर्धारण, विभिन्न अलङ्कारों में ध्वनि के अन्तर्भाव का निषेध, ध्वनि के मुख्य दो भेदों का निरूपण , भाक्तवाद के विकल्पों का खण्डन अनिर्वचनीयतावाद का खण्डन प्रभृति विषय वर्णित हैं।

द्वितीय उद्योत में ध्वनिकाव्य के भेदों का निरूपण, रसवदादि अलङ्कार से भिन्न ध्वनि का विषय निर्देश, गुण और अलङ्कारों के स्वरूप का निरूपण करते हुए दोनों के बीच पार्थक्य प्रदर्शन गुणों एवं अलङ्कारों के साथ रसादि की स्थिति, ध्वनि में अलङ्कारनिरूपण की समीक्षा , वस्तुध्वनि एवं अलङ्कार ध्वनि का निरूपण इत्यादि विषय वर्णित हैं।

तृतीय उद्योत में ध्वनि की व्यापकता अर्थात् पदप्रकाशता, वाक्यप्रकाशता, वर्ण, तद्धित, कृदन्त, उपसर्ग प्रत्यय आदि से लेकर प्रबन्ध पर्यन्त ध्वनि की सत्ता का प्रदर्शन संघटना के स्वरूप एवं भेदों का निरूपण, गुणों के साथ संघटना का संबन्ध, सुबन्त–तिङन्त प्रभृति अंशो की व्यञ्जकता, रसपरिपाक की चर्चा, रसों के विरोध और अविरोध का निरूपण शान्तरस की स्थिति, गुणीभूतव्यंग्य–काव्य का निरूपण, चित्र काव्य का निरूपण प्रभृति विषयों का विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है।

चतुर्थ उद्योत में प्रतिभा के आनन्त्य का वर्णन है। प्रतिभाशाली कवि ध्वनि के द्वारा प्राचीन भाव, अर्थ, उक्ति आदि को नूतन चमत्कार प्रदान कर सकते हैं इस तथ्य का सोदाहरण निरूपण किया गया है। महाभारत में शांत रस का अंगी रस के अन्त में वर्तमान कवि अपने पूर्ववर्ती कवि से किस तरह संवाद करता है, इस पक्ष को वर्णित करने के लिए संवाद तत्त्व का विवेचन वर्णित है।

ध्वन्यालोक की प्राचीन एवं प्रसिद्ध टीकाओं में ध्वन्यालोक लोचन तथा चन्द्रिका टीका का नाम विश्रुत है। इनमें से केवल अभिनवगुप्तपादाचार्य विरचित लोचन टीका ही

सम्प्रति उपलब्ध है। चन्द्रिका टीका का नाम भी हम लोचन टीका से ही जान पाते हैं, जैसा कि लोचनकार ने ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की व्याख्या के अन्त में लिखा है–

किं लोचनं विनालोको भाति चन्द्रिकयापि हि।
तेनाभिनवगुप्तोऽत्र लोचनोन्मीलनं व्यधात्।।

7.2.2 मङ्गलाचरणम्

स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छस्वच्छायासितेन्दवः।
त्रायन्तां वो मधुरिपोः प्रपन्नार्तिच्छिदो नखाः।।

प्रसंग– किसी भी ग्रन्थ की निर्विघ्न पूर्णता के लिए तथा पाठकों, अध्यापकों, व्याख्याकारों, समीक्षकों एवं सहृदय सामाजिकों के कल्याण हेतु तथा छात्रों की शिक्षा के लिये कवि , शास्त्रकार तथा टीकाकार अपने काव्यग्रन्थ काव्यशास्त्र–ग्रन्थ या टीका के प्रारम्भ में अपने समुचितेष्टदेवता की आराधना वन्दना या स्तुति मङ्गलाचरण के रूप में करते हैं। संस्कृतशास्त्रों की परम्परानुसार ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण की परिपाटी रही है। संस्कृतग्रन्थों में मङ्गलाचरण के आशीर्वादात्मक नमस्क्रियात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक त्रिविधरूप प्राप्त होते हैं। उसी परम्परा का परिपालन करते हुए आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण ध्वन्यालोक में प्रस्तुत किया है। जिसमें वे भगवान् विष्णु के विविध अवतारों में से नरसिंहावतार के प्रपन्नार्तिच्छेदक नखों का स्मरण करते हुए, यह आशीर्वाद प्राप्ति की कामना है कि वे नख हम सब की रक्षा करें।

अर्थ– स्वयं अपनी इच्छा से केसरी (नृसिंह) का रूप धारण किये हुए भगवान् मधुरिपु (मधु नामक दैत्य के रिपु भगवान् विष्णु) के स्वच्छ (धवल) अपनी निर्मल कान्ति से इन्दु (चन्द्रमा) को आयासित (खिन्न) करनेवाले तथा प्रपन्न जनों की (शरणागतों की)आर्ति (पीड़ा, दुःख)का छेदन करने वाले (शमन करने वाले) दुःखनाश करने वाले नख आप सब लोगों की रक्षा करें।

इस मङ्गलपद्य में रसध्वनि–वस्तुध्वनि–अलङ्कारध्वनि आदि व्यञ्जित होते हैं। रसध्वनि के रूप में यहाँ वीररस ध्वनित होता है, क्योंकि उत्साह ही वीररस का स्थायी भाव है। वस्तुध्वनि के रूप में नख को करण न बनाकर कर्ता के रूप में उनका निर्देश किया गया है, इससे नखों की अतिशय शक्तिमता ध्वनित होती है। इसके बाद एक और भी वस्तु ध्वनित होती है वह यह कि परमेश्वर को अतिरिक्त करण या साधन की अपेक्षा नहीं इस त्राणरूपी कार्य में उनके अपने शरीर के ही एक तुच्छ साधारण तत्त्व नख ही पर्याप्त है। अलङ्कार ध्वनि का निर्देश करते हुए लोचनकार अभिनवगुप्ताचार्य का कहना है कि एक तो बालचन्द्र को इस बात का खेद है कि उक्त नखों जैसी स्वच्छता उसमें नहीं है। किसी प्रकार यदि इस अंश में समता हो भी जाए तो भी बालचन्द्र को यह बात हमेशा खिन्न करती रहेगी कि ये नख तो प्रपन्न जनों के आर्ति के निवारण करने में समर्थ हैं, पर मैं इसमें समर्थ नहीं हूँ।

यहाँ उपमानभूत चन्द्र से उपमेयभूत नखों के आधिक्य की प्रतीति होने से व्यतिरेक नामक अलङ्कार भी ध्वनित होता है। इस प्रकार उक्त मङ्गलाचरण के पद्य में रस–वस्तु व अलङ्कार ध्वनि को प्रदर्शित किया गया है।

7.2.3 ग्रन्थ का प्रयोजन एवं ध्वनिविषयक तीन विप्रतिपत्तियाँ

(ध्वन्यालोकः) प्रथम उद्योत, कारिका 1 से 4 तक

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय की चर्चा करते हुए ग्रन्थकार प्रसङ्गवश उसका प्रयोजन ध्वनिस्वरूपज्ञान तथा ध्वनिस्वरूप ज्ञज्ञन का प्रयोजन सहृदयमनःप्रीति का निर्देश किया है। ध्वन्यालोक ग्रन्थ का प्राधान्यतः अभिधेय या प्रतिपाद्य 'ध्वनि'तत्त्व है, ध्वनि के स्वरूप का ज्ञान प्रयोजन है तथा इस प्रयोजन का प्रयोजन सहृदयजनों के मन की प्रीति या प्रसन्नता है यथा–

7.2.4 विप्रतिपत्तियों का विश्लेषण

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व–

स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमुचुस्तदीयं
तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्।।

अर्थ– काव्य के सारभूत जिस तत्त्व को विद्वान् लोग ध्वनि नाम से कहते आये हैं। कुछ अन्य विद्वान् लोग उसका (ध्वनि तत्त्व का) अभाव कहा है। दूसरे विद्वान् लोग उसे भाक्त (गौण, लक्षणागम्य) कहते है, और कुछ अन्य विद्वान् जन उस ध्वनि के तत्त्व को (रहस्य को) वाणी का अविषय (अवर्णनीय, अनिर्वचनीय कहा अत एव ध्वनि के विषय में इन नाना विप्रतिपत्तियों के होने के कारण उनका निराकरण कर, तथा ध्वनि की स्थापना के द्वारा) सहृदयजनों (काव्यमर्मज्ञ जनों) के मन की प्रीति के लिए प्रसन्नता के लिए हम उस ध्वनि के स्वरूप का निरूपण करते हैं।

इसी तथ्य को ग्रन्थकार वृत्तिभाग में और विस्तार से स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

''बुधैः काव्यतत्त्वविद्भिः, काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति संज्ञितः परम्परया यः समाम्नातपूर्वः सम्यक् आसमन्ताद्, म्नातः, प्रकटितः, तस्य सहृदयजनमनःप्रकाशमानस्याप्यभावमन्ये जगदुः। तदभाववादिनां चामी विकल्पाः संभवन्ति।''

बुधैः अर्थात् काव्य के मर्मज्ञ विद्वानों ने जिस सारभूत तत्त्व को 'ध्वनि' यह नाम दिया, और परम्परा से जिसको बार–बार प्रकाशित किया है, भली प्रकार से विशदरूप से अनेक बार प्रकट किया है, सहृदयजनों मन में प्रकाशमान भी उस (ध्वनि) का कुछ विद्वान् लोग अभाव कहते हैं, अर्थात् काव्य की आत्मा के रूप में उन्हें ध्वनितत्त्व मान्य नहीं था, अतः वे ध्वनि की सत्ता के विरुद्ध थे अर्थात् ध्वनि का अभाव मानते थे।

7.2.5 अभाववाद एवं उनके विकल्पों का निरूपण

उन अभाववादियों के भी मुख्यतया तीन अवान्तर विकल्प हो सकते हैं जैसा कि ध्वनिकार ने निरूपित किया है–

प्रथमविकल्प–तत्र केचिदाचक्षीरन् शब्दार्थशरीरन्तावत् काव्यम्। तत्र शब्दगताश्चारुत्वहेतवोऽनुप्रासादयः प्रसिद्धम एव। अर्थगताश्चोपमादयः। वर्णसंघटनाधर्माश्च ये माधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयन्ते। तदनतिरिक्तवृत्तयो वृत्तयोऽपि याः कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः ता अपि गताः श्रवणगोचरम्। रीतयश्च वैदर्भीप्रभृतयः। तद्व्यतिरिक्तः कोऽयं ध्वनिर्नामेति?

इस पक्ष का कहना है कि शब्द और अर्थ सम्मिलित रूप से काव्य है इनमें चारुता (सौन्दर्य, शोभा) का आधन दो प्रकार से हो सकता है– 1. स्वरूप में रहने वाली चारुता और 2. संघटना में रहनेवाली चारुता। वहाँ शब्द की स्वरूपनिष्ठ चारुता शब्दालङ्कार से निष्पन्न होती है, अर्थ की स्वरूपनिष्ठ चारुता उपमा आदि अर्थालङ्कारों से निष्पन्न होती है। इन शब्द–अर्थ के संघटनाश्रित चारुता माधुर्यादि गुणों से निष्पन्न होती है। वृत्तियों और रीतियोंसे भी काव्य में चारुता सम्पन्न हो सकती है, परन्तु वे वृत्ति व रीति, गुणालङ्कार से भिन्न नहीं हैं।

वृत्तियाँ तीन हैं– परुषा, उपनागरिका और कोमला, ये तीनों ही अनुप्रास के प्रकार है। इसी प्रकार वैदर्भी, पाञ्चाली व गौडी रीतियाँ भी माधुर्यादि गुणों की ही समुदाय रूप है फलतः वृत्ति व रीति अलङ्कार व गुण से भिन्न नहीं है, ये ही सब काव्य के चारुत्व के हेतु हैं। परन्तु उन सबसे भिन्न यह ध्वनि कौन सा (नया) पदार्थ है? अतः ध्वनिनामक तत्त्व को काव्य में चारुत्व का निष्पादक मानना नितान्त असङ्गत है, फलतः ध्वनि नामक पदार्थ की कोई सत्ता नहीं है।

द्वितीय विकल्प– अभाववाद का दूसरा विकल्प निम्नलिखित प्रकार है–

अन्ये ब्रूयुः नास्त्येव ध्वनिः। प्रसिद्धप्रस्थानव्यतिरेकिणः काव्यप्रकारस्य काव्यत्वहानेः। सहृदयहृदयाह्लादि शब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्। न चोक्तप्रस्थानातिरेकिणो मार्गस्य तत्संभवति। न च तत्समयान्तःपातिनः सहृदयान् कांश्चित् परिकल्प्य तत् प्रसिद्धया ध्वनौ काव्यव्यपदेशः प्रवर्तितोऽपि सकलविद्वन्मनोग्राहितामवलम्बते।

इस पक्ष का कहना है कि काव्य तो प्रसिद्ध प्रस्थानयुक्त है, अर्थात् काव्य की एक निश्चित परम्परा है, जिसे प्रस्थान कहते है, वह है सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने वाली शब्दार्थयुगल की मनोहर योजना। इसके अतिरिक्त तो अन्य कोई भी काव्यमार्ग निश्चित नहीं है। अर्थात् गुणालङ्कार से सुसंस्कृत शब्दार्थगण शरीर होतो काव्य है। इसी में सहृदयों की भी सम्मति है। ध्वनि के विषय में तो ऐसा कोई सर्वसम्मत सिद्धन्त नहीं है। अर्थात् कतिपय सहृदयों के सम्मत होने पर की ध्वनि सम्पूर्ण विद्वत्समाज का हृदयावर्जन तो नहीं कर सकता है। अतः ध्वनि के विषय में भी कुछ भी कहना निरर्थक ही है।

तृतीय अभाववादी– अभाववाद का तृतीय विकल्प निम्नलिखित प्रकार से है–

''पुनरपरे तस्याभावमन्यथा कथयेयुः। न संभवत्येवध्वनिर्नामापूर्वः कश्चित्। कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तेष्वेव चारुत्वहेतुष्वन्तर्भावात्। तेषामन्यतमस्यैव वा अपूर्वसमाख्यामात्रकरणे यत्किञ्चन कथनं स्यात्।

किं च, वाग्विकल्पानामानन्त्यात् संभवत्यपि वा कस्मिंश्चित् काव्यलक्षणविधयिभिः प्रसिद्धैरप्रदर्शिते प्रकारलेशे, ध्वनिर्ध्वनिरिति यदेतदलीकसह्यदयत्वभावनामुकलितलोचनैर्नृत्यते, तत्र हेतुं न विद्मः। सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलंकारप्रकाराः प्रकाशिताः प्रकाश्यन्ते च। न च तेषामेषा दशा श्रूयते। तस्मात् प्रवादमात्रं ध्वनिः। न त्वस्य क्षेदक्षमं तत्वं किंचिदपि प्रकाशयितुं शक्यम्।

इस पक्ष का कहना है कि ध्वनि नाम का कोई नवीन पदार्थ हो ही नहीं सकता है। यदि ध्वनि किसी प्रकार की कमनीयता का कारण है भी, तो वह उक्त काव्य में चारुत्व

उत्पन्न करने वाले जितने साधन हैं उन्हीं के भीतर किसी मं ध्वनि का भी अन्तर्भाव हो जाएगा। अतः ध्वनि नाम की कोई विलक्षण वस्तु नहीं मानी जा सकती है। वाक्–विकल्पों का अर्थात् शब्द और अर्थ के प्रकारों का वैचित्र्य अनन्त है, अर्थात् शब्दार्थ के वैचित्र्य की कोई सीमा नहीं है। कितने ही आचार्यों के द्वारा शब्दार्थ की विचित्रता का प्रकाशन नाना प्रकार से किया गया है, प्रकाशित कर रहे है। इन्हीं विचित्रताओं में से एक विचित्रता का नाम ध्वनि किया जा सकता है।

अर्थात् ध्वनि की सत्ता को स्वतन्त्र रूप से मानना सर्वथा युक्तियुक्त नहीं है। फलतः गुण या अलङ्कार के किसी अप्रदर्शित लेश विशेष प्रकार में ही इसका अन्तर्भाव हो सकता है। ध्वनि यह इन तीनों अवान्तर विकल्पों में सूक्ष्म भेद इस प्रकार है– 1. प्रथम पक्ष के अनुसार ध्वनि नामक कोई तत्त्व ही नहीं है। 2. द्वितीय पक्ष के अनुसार ध्वनि प्रसिद्ध सर्वसम्मत काव्यतत्त्व नहीं है, भले ही कतिपय विद्वान् इसकी सत्ता को स्वीकार करें, परन्तु सर्वसम्मत नहीं है। 3. तृतीय पक्ष के अनुसार यदि ध्वनि के चारुत्व का हेतु मान भी लिया जाय तो किसी गुण या अलङ्कार के प्रकार विशेष में ही इसका अन्तर्भाव हो सकता है।

इस सन्दर्भ में किसी अन्य (ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन के समकालीन मनोरथ कवि) का श्लोक इस प्रकार है–

तथा चान्येन कृत एवात्र श्लोकः–

यस्मिन्नस्ति न वस्तु किञ्चन मनःप्रह्लादि सालंकृति,
व्युत्पन्नै रचितं च नैव वचनैर्वकोक्तिशून्यं च यत् ।
काव्यं तद्ध्वनिना समन्वितमिति प्रीत्या प्रशंसन् जडो,
नो विद्मो अभिदधाति किं सुमतिना पृष्टः स्वरूपं ध्वनेः।।

जिसमें अलंकारयुक्त, मन को आह्लादित करने वाला कोई वर्णनीय अर्थतत्व नही है । जो चातुर्य से युक्त सुन्दर शब्दों से विरचित नही हुआ है और जो वक्रोक्ति से शून्य है। इस प्रकार जो शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं माधुर्यादि गुणों से सर्वथा शून्य है, उसकी यह ध्वनि से युक्त काव्य है यह कहकर प्रीतिपूर्वक प्रशंसा करनेवाला मूर्ख, किसी बुद्धिमान् के पूछने पर मालूम नहीं ध्वनि का क्या स्वरूप बतायेगा ।

7.2.6 भाक्तवाद का निरूपण

ध्वनिविरोधिमतों में अभाववाद के पश्चात् ध्वनिकार ने भाक्तवाद (लक्षणावाद) के मतों को वर्णित किया है। मूल कारिका में 'भाक्तमाहुस्तमन्ये' से इस मत को उद्धृत किया गया है। जहाँ अभाववादियों के मतों की संभावना के कारण उसे 'जगदुः' इस लिट्लकार के द्वारा उपस्थापित किया गया था, वही 'भाक्तवाद' के मत को 'आहुः' इस वर्तमान कालिक क्रिया से अभिव्यक्त किया है और उसका कारण का स्पष्ट है कि भक्तिवादियों के मत साहित्यशास्त्रीयग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। भक्ति या लक्षणावादी आचार्यों का कहना है कि ध्वनि का इसी लक्षणा में या लक्षणा का भेद जो गुणवृत्ति है उसी में अन्तर्भाव हो जाएगा। अतः ध्वनि नामक पृथक् तत्त्व मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्राचीन आचार्य लक्षणावृत्ति को भक्ति शब्द से भी कहते थे।

इसकी व्युत्पत्ति अभिनवगुप्ताचार्य ने लोचनटीका में इस प्रकार दी है–**भज्यते= सेव्यते पदार्थेन प्रसिद्धतयोत्प्रेक्ष्यते इति भक्तिर्धर्मोऽभिध्येन सामीप्यादिः, तत आगतो**

भाक्तो लाक्षणिकोऽर्थः। सेवार्थक भज् धातु से क्तिम् प्रत्यय द्वारा भक्तिशब्द निष्पन्न होता है। यहाँ भज्यते का अर्थ है प्रसिद्ध होने के कारण जिसकी उत्प्रेक्षा–सम्भावना की जाय वह भाक्ति है अर्थात् वाक्यार्थ के द्वारा तटादि का सामीप्यादि धर्म उत्प्रेक्षित होता है। उस सामीप्यादि के निमित्त से प्रतीत होनेवाला लाक्षणिक अर्थ ही भाक्त है, अर्थात् लक्ष्यार्थ।

यह लक्षणा दो प्रकार की होती है शुद्धा और गौणी लक्षणा। मीमांसक लोग गौणीवृत्ति को लक्षणा से भिन्न मानते हैं, पर यहाँ भक्ति शब्द से दोनों का ग्रहण हो जाएगा। भक्ति का एक अर्थ (मुख्यस्य चार्थस्य भङ्गो भक्तिरित्येवं मुख्यार्थबाध निमित्तं प्रयोजनमिति) भङ्ग भी है जिसका अर्थ तोड़ना है अर्थात् मुख्य अर्थ का जहाँ भङ्ग किया जाय– मुख्यार्थस्य भङ्गो भक्तिः। अर्थात् मुख्यार्थबाधः। मुख्यार्थबाधित होने के पश्चात् उसी से फिर किसी नवीन अर्थ की कल्पना की जाय, इस नवीन कल्पित अर्थ को भी हम भाक्त कह सकते हैं भक्ति का एक अर्थ है श्रद्धादिशय, किसी विशेष प्रयोजन में श्रद्धा होने पर ही लक्षणा की जाती है–**भक्तिः प्रतिपाद्ये सामीप्यतैक्षयादौ श्रद्धातिशयः। तां प्रयोजनत्वेनोद्दिश्य तत आगतो भाक्त इति गौणो लाक्षणिकश्च।**

भक्ति का तीसरा अर्थ है सेवा अर्थात् पदार्थ के साथ सम्बन्ध रखने वाला सामीप्यादि नवीन अर्थ। इन तीनों अर्थों को लेकर भक्ति शब्द का अर्थ साहित्यशास्त्र में लक्षणा किया जाता है।

भक्तिवादियों का कहना है कि यद्यपि स्पष्ट रूप से प्राचीन आचार्यों ने ध्वनि का लक्षणा में अन्तर्भाव नहीं किया है, परन्तु उन्होंने काव्य में अमुख्य वृत्ति अर्थात् लक्षणा या गुणवृत्ति का प्रतिपादन करते हुए ध्वनितत्त्व को प्राथमिकता ही दी है, अतः ये आचार्य गुणवृत्ति नहीं किया न ध्वनितत्त्व को प्राथमिकता ही दी है, अतः ये आचार्य गुणवृत्ति लक्षणा के अन्दर ध्वनि का समावेश करते थे। जैसा कि ध्वनिकार ने कहा है –

''भाक्तमाहुस्तमन्ये। अन्ये तं ध्वनिसंज्ञितं... काव्यात्मानं गुणवृत्तिरित्याहुः। यद्यपि च ध्वनिशब्दसङ्कीर्तनेन काव्यलक्षणविधायिभिर्गुणवृतिरन्यो वा न कश्चित्प्रकारः प्रकाशितः, तथापि अमुख्यवृत्या काव्येषु व्यवहारं दर्शयता ध्वनिमार्गो मनाक्स्पृष्टोऽपि न लक्षित इति परिकल्प्यैवमुक्तम् ..... भाक्तमाहुस्तमन्ये'इति।

7.2.7 अनिर्वचनीयतावाद का निरूपण

ध्वनि विरोधी मतों में से तृतीय मत अनिर्वचनीयता वाद है। जिसे मूल कारिका में ध्वनिकार ने 'केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्' के द्वारा उपस्थापित किया है।

अनिर्वचनीयतावादी आचार्यों के मत में ध्वनितत्त्व का निर्वचन वाणी द्वारा नहीं हो सकता है, यह तो स्वतः अनुभूति का ही विषय है। परन्तु इसका लक्षण स्वरूपादि का निर्वचन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता है, यह तो केवल सहृदयहृदसंवेद्य ही है। जैसे–

केचित्पुनर्लक्षणकरणशालीनबुद्धयो ध्वनेस्तत्त्वं गिरामगोचरं सहृदयहृदयसंवेद्यमेव समाख्यातवन्तः तेनैवंविधसु विमतिषु स्थितासु सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपं ब्रूमः।

अर्थ– लक्षणनिर्माण में अप्रगल्भबुद्धि किन्हीं (तीसरे वादी) ने ध्वनि के तत्त्व को केवल सहृदय–हृदयसंवेद्य और वाणी के परे (अलक्षणीय, अनिर्वचनीय) कहा है।

अतः इस प्रकार के मतभेदों विमतियों के होने के कारण सहृदयों के हृदयह्लाद के लिए हम उसका स्वरूप प्रतिपादन करते हैं।

7.2.8 ध्वनिनिरूपण का प्रयोजन

आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोकग्रन्थ के प्रथम उद्योत की पहली कारिका तथा कारिका की वृत्तियों में ध्वनिविरोधि तीन मतो या वादों (अभाववाद, भाक्तवाद एवं अनिर्वचनीयतावाद) को विकल्प सहित विस्तार से निरूपित किया है। ध्वन्यालोक का मुख्यप्रतिपाद्य है ध्वनि के स्वरूप का निरूपण कर ध्वनिसिद्धन्त की स्थापना करना। अतः ध्वनि के शब्दार्थ में सभी संभावित विमतियाँ को उपस्थापित करने के पश्चात् के ध्वनिनिरूपण का प्रयोजन बताते हुए कहते है कि–

''तेनैवंविधासु ..... प्रतिष्ठामिति प्रकाश्यते।''

अर्थ– ध्वनि के विषय में नाना प्रकार के विमतियों एवं विरोधी मतों के होने के कारण सहृदयों के मनस्तोष हेतु ध्वनि का स्वरूप विवेचन परमावश्यक है। उस ध्वनि का स्वरूप समस्त सत्कवियों के काव्यों का परम रहस्यभूत, अत्यन्त सुन्दर है, जो प्राचीन काव्यलक्षणकारों की सूक्ष्मतर बुद्धि द्वारा भी उन्मीलित नहीं हुआ है, और जिसका रामायण, महाभारत प्रभृति लक्ष्यग्रन्थों में सर्वत्र उसके प्रसिद्ध व्यवहार को परिलक्षित करनेवाले सहृदयों के मन में आनन्द (ध्वनितत्त्व के निर्वचनजन्म काव्यानन्द) प्रतिष्ठा को प्राप्त करें, इसलिए उस ध्वनितत्त्व के स्वरूप को प्रकाशित किया जाता है।

ग्रन्थ के आरम्भ में ही निरूपित किया जा चुका है कि प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रयोजन ध्वनि स्वरूप का ज्ञान है, किन्तु तत्त्वज्ञान के लिए ध्वन्यालोक ग्रन्थ का निर्माण अभीष्ट है और 'काव्य' का चरम लक्ष्य सहृदयजनों की मनःप्रीति ही है। वस्तुतः ध्वनिनिरूपण के दो ही प्रयोजन है। एक तो 'ध्वनि' के सम्बन्ध में विमतियों का निराकरण और दूसरा सहृदयजनों की प्रीति। ध्वनिस्वरूप का निरूपण सहृदयजनों को प्रसन्न करने के लिए ही आचार्य विमतियों के निराकरण पूर्वक करने जा रहे हैं।

वस्तुतः काव्य के प्रयोजनों में यश और अर्थ की प्राप्ति व्यवहारज्ञान और सद्यःपरनिर्वृति परमानन्द आदि अनेक फल माने गये हैं। परन्तु उन सबमें सद्यःपरनिर्वृति या आनन्द ही सबसे प्रधान फल है। अन्य यश औश्र अर्थ आदि की चरम परिणति आनन्द में ही होती है। इसलिए यहाँ काव्यात्मभूत ध्वनितत्त्व के निरूपण का एकमात्र फल 'आनन्द' मूलकारिका में 'सहृदयमनःप्रीतये' शब्द से और उसकी वृत्ति में 'आनन्द' शब्द से दिखाया है।

साथ ही इस मूल कारिका एवं वृत्ति के द्वारा ग्रन्थकार ने अनुबन्धचतुष्टय (विषय–प्रयोजन–अधिकारी और सम्बन्ध) को भी निरूपित किया है। तदनुसार 'तत् स्वरूपं ब्रूमः' से ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय ध्वनि का स्वरूप है, यह सूचित किया है। ध्वनि के संबन्ध में विमतियों का निराकरण और उससे 'सहृदयमनःप्रीतये' से मनःप्रीतिरूप मुख्य प्रयोजन सूचित हुआ। ध्वनिस्वरूप जिज्ञासु सहृदय उसका अधिकारी और शास्त्र का विषय के साथ प्रतिपाद्य–प्रतिपादकभाव तथा प्रयोजन के साथ साध्य–साधनभाव सम्बन्ध है इस प्रकार अनुबन्धचतुष्टय की निर्वहण किया गया है।

7.3 ध्वनि सिद्धान्त की भूमिका

ध्वनिलक्षण की प्रस्तावना, वाच्य एवं प्रतीयमानार्थ का स्वरूपनिरूपण ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की पहली कारिका एवं वृत्ति के द्वारा विषय और प्रयोजन का निरूपण एवं निर्धारण हो जाने पर जिस ध्वनितत्त्व का लक्षण और स्वरूप निर्धरण करने जा रहे हैं उसकी आधार भूमि (भूमिरिव भूमिका) निर्माण हेतु ग्रन्थकार कहते हैं–

'तत्र ध्वनेरेव लक्षयितुमारब्धस्य भूमिकां रचयितुमिदमुच्यते–

योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।

जैसे किसी अपूर्व प्रासाद (भवन) के निर्माण के लिए सर्वप्रथम उसके आधारभूमि (नींव) का निर्माण किया जाता है। अधारभूमि का निर्माण हो जाने पर ही उसके ऊपर भवन–निर्माण का कार्य प्रारम्भ होता है। उसी प्रकार वाच्यार्थ ध्वनि की आधरभूमि है, उसी के आधार पर प्रतीयमानार्थ की अभिव्यक्ति होती है। अर्थात् ध्वनिरूप अपूर्व प्रासाद की स्थापना के लिए वाच्य रूपी आधारभूमि की निर्देश किया गया है।

अर्थ– कारिका सं. 2. सहृदयों द्वारा प्रशंसित जो अर्थ काव्य के आत्मारूप में प्रतिष्ठित है उसके वाच्य और प्रतीयमान दो अर्थ कहे गये हैं। कारिका की वृत्ति में ध्वनिकार ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है– शरीर में आत्मा के समान, सुन्दर (गुणालङ्कारयुक्त) उचित (रसादि के अनुरूप) रचना के कारण रमणीय काव्य के साररूप में स्थित, सहृदयजन प्रशंसित जो अर्थ है उसके वाच्य और प्रतीयमान ये दो भेद है। यथा च–

'काव्यस्य हि ललितोचितसन्निवेशचारुरूपः शरीरस्येवात्मा साररूपतया स्थितः सहृदयश्लाघ्यो योऽर्थस्तस्य वाच्यः प्रतीयमानश्चेति द्वौ भेदौ।'

कारिका भाग में आए हुए काव्यशब्द की व्याख्या करते हुए लोचनकार कहते हैं– 'ललित' शब्द से गुण और अलङ्कार का अनुग्रह (सहाकत्व) कहा है। 'उचित'शब्द से रसविषयक ही औचित्य होता है यह दिखाते हुए रसध्वनि का जीवितत्व सूचित करते हैं। वाच्य से यहाँ अलङ्कारके गुण, रीति आदि का ग्रहण किया है वाच्यार्थ का नहीं। जैसा कि स्वयं ध्वनिकार कहते हैं–

7.3.1 वाच्य एवं प्रतीयमान अर्थ का स्वरूपनिरूपण

तत्र वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारैरूपमादिभिः।
बहुध व्याकृतः सोऽन्यैः ततो नेह प्रतन्यते।।

अर्थ– उन दोनों में से (वाच्य–प्रतीयमान में से) वाच्य अर्थ वह है जो उपमादि (गुणालङ्कार) प्रकारों से प्रसिद्ध है और अन्यों ने (पूर्व लक्षणकारों, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट आदि) अनेक प्रकार से उनका प्रदर्शन किया है, व्याख्यान किया है, निरूपण किया है, इसलिए हम यहाँ उनका विस्तार से प्रतिपादन नहीं कर रहे हैं, केवल आवश्यकता अनुसार, उपयोग के लिए उसका अनुवादमात्र करेंगे।

प्रतीयमानार्थ का स्वरूप निरूपण–

कारिका सं. द्वितीय में सहृदयों द्वारा प्रशंसित काव्यार्थ जो कि 'काव्यात्मा' के रूप में व्यवस्थित है, उसके दो भाग या अंश माने गए हैं, एक वाच्य और दूसरा प्रतीयमान। उसमें वाच्य जो कि उपमादि प्रकारों से प्रसिद्ध है, तथा जिसका व्याख्यान (भामह, दण्डी, भट्टोद्भट, वामन, रुद्रट आदि) आचार्यों ने अनेक तरह से किया ही है, अतः आनन्दवर्ध्न के द्वारा उसका विस्तारपूर्वक निरूपण नहीं किया गया।

परन्तु प्रतीयमानार्थ का विवेचन ध्वनिकार को अभीष्ट है क्योंकि प्रतीयमानार्थ के स्वरूप निर्धारण के द्वारा ही ध्वनिसिद्धान्त की सिद्धि होनी है, अतः ध्वनिकार ने प्रतीयमान का लक्षण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं, विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।

अर्थ– प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो रमणियों के प्रसिद्ध (मुख, नेत्र, श्रोत्र, नासिकादि) अवयवों से भिन्न ललनाओं के लावण्य के समान, महाकवियों वचनों में वाच्यार्थ से अलग ही विशेरूप में भासित होता है।

इसी तथ्य को कारिका की वृत्ति में ध्वनिकार के द्वारा और स्पष्ट किया गया है–**'प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वाच्याद्वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्। यत्तत्सहृदयसुप्रसिद्धं प्रसिद्धेभ्योऽलङ्कृतेभ्यः प्रतीतेभ्यो वाऽवयवेभ्यो व्यतिरिक्तत्वेन प्रकाशते लावण्यमिवाङ्गनासु। यथा ह्यङ्गनासु लावण्यं पृथङ्निर्वर्ण्यमानं निखिलावयवव्यतिरेकि किमप्य ..... तद्वदेव सोऽर्थः।'** है।

प्रतीयमान महाकवियों के वचनों में वाच्यार्थ से भिन्न कुछ और ही विलक्षण वस्तु है, जिस प्रकार अङ्गनाओं में लावण्य (सौन्दर्य, कान्ति आभा–छटा आदि) अन्य समान अवयवों से पृथक् ही प्रकाशित होता है, और वही लावण्य सहृदय नेत्रों के लिए अमृततुल्य नयनानन्द जनक होता है इसी प्रकार व्यञ्जना वृत्ति से प्रतिपाद्य वह प्रतीयमान (व्यङ्ग्यार्थ) भी प्रसिद्ध वाच्यालङ्कारों से पृथक् ही है। जो सहृदयों के लिए आह्लादस्वरूप चमत्कृतिस्वरूप परमानन्द का जनक होता है, अतः वह प्रतीयमान कुछ विलक्षण ही तत्त्व है

7.3.2 प्रतीयमान का वाच्य से भिन्नत्व

यह ललना–लावण्य तुल्य व्यङ्ग्यार्थ वाच्य से सामर्थ्य से आक्षिप्त वस्तु अलङ्कार व रसादि के रूप में उपलब्ध होता है। ध्वनि के इन सभी प्रकारों में वह ध्वन्यमान अर्थ या प्रतीयमानार्थ वाच्य से पृथक् ही होगा। यथा–

स ह्यर्थो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तं वस्तुमात्रं, अलङ्काररसादयश्चेत्यनेक–प्रभेदप्रभिन्नो दर्शयिष्यते। सर्वेषु च तेषु प्रकारेषु तस्य वाच्यादन्यत्वम्। तथा हि आद्यस्तावत् प्रभेदो वाच्याद् दूरं विभेदवान्। स हि काचिद् वाच्ये विधिरूपे प्रतिषेधरूपः।

वाच्य से व्यङ्ग्य की पृथक् सत्ता को ग्रन्थकार ने कई उदाहरणों के द्वारा प्रदर्शित किया है, जैसे– वाच्यार्थ कही विधिरूप है तो व्यङ्ग्यार्थ निषेधरूप होता है। इस प्रकार वाच्य व व्यङ्ग्य में महान् अन्तर है यथा–

भ्रम धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदानदीकच्छकुञ्जवासिना दृप्तसिहेन।।

इस पद्य में पहला (वस्तुध्वनि) भेद वाच्य से अत्यन्त भिन्न है। क्योंकि यहाँ वाच्य विधिरूप है तो वह प्रतीयमान प्रतिषेधरूप है।

पद्य का अर्थ– हे धर्मिक! गोदावरीनदी के किनारे कुञ्ज में रहनेवाले मदमत्त सिंह ने आज उस कुत्ते को मार डाला है, अब आप निश्चिन्त होकर घूमिये।

प्रस्तुत पद्य का प्रसङ्ग इस प्रकार है कि गोदावरी नदी के तट पर अपने प्रेमी के साथ रोज घूमने वाली किसी पुंश्चली (कुलटा) नायिका की यह उक्ति है किसी धर्मिक पण्डित जी के प्रति जो कि नित्य अपनी पूज्य (सन्ध्योपासना आदि) के लिए पुष्प–चयन हेतु उस गोदावरी के कुञ्ज में पहुच जाता था। जिससे उस नायिका को अपने प्रणयप्रसङ्ग में बाधा होती थी। अतः वह चाहती है कि व ये पण्डितजी इधर न आया करें। वैसे बिना बात उनको आने का सीध निषेध करना तो अनुचित और अनध्किार चेष्टा होती, इसलिए उसने सीध निषेध न करके उस प्रदेश में मत्त सिंह की उपस्थिति की उसने सीधा निषेध न करके उस प्रदेश में मत्त सिंह की उपस्थिति की सूचना द्वारा पण्डितजी को भयभीत कर उसके रोकने का यह मार्ग निकाला है।

प्रकृत श्लोक में वह पण्डितजी महाराज को यही सूचना दे रही है, परन्तु एक विशेष ढङ्ग से। वह कहती है– हे धार्मिक! वह कुत्ता जो आपको रोज तङ्ग किया करता था उसे गोदावरी के किनारे कुञ्ज में रहने वाले मदमत्त सिंह ने मार डाला है और अब आप निर्भय होकर भ्रमण करें। कुलटा नायिका जानती है कि पण्डितजी तो कुत्ते से ही डरते हैं, जब उन्हें मालूम होगा कि उसे सिंह ने मार डाला वह सिंह यहीं कुञ्ज में रहता है तो निश्चय ही पण्डितजी भूलकर भी उधर आने का साहस नहीं करेंगे। इसलिए वह पण्डितजी को निश्चिन्त होकर भ्रमण करने का निमन्त्रण दे रही है, परन्तु उसका तात्पर्य यही है कि कभी भूलकर भी इधर पैर न रखना, नही तो आपकी खैर नहीं। इस श्लोक का वाच्यार्थ तो विधिरूप है परन्तु जो उससे प्रतीयमान अर्थ (वस्त ध्वनि) है वह निषेधरूप है इसलिए वाच्यार्थ से प्रतीयमान अर्थ अत्यन्त भिन्न है। कहीं वाच्य प्रतिषेधरूप है तो व्यङ्ग्य (प्रतीयमानार्थ) विधिरूप होता है–

श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय।
मा पथिक रात्र्यन्ध शय्यायामावयोः शयिष्ठा।।

अर्थ– हे पथिक! दिन में अच्छी तरह देख लो, यहाँ सासजी सोती हैं और यहाँ मैं सोती हूँ। रात के अन्धे (रतौंधी के रोगी) हे पथिक! कहीं हमारी खाट पर न गिर पड़ना।

प्रस्तुत मूल प्राकृत गाथा में यद्यपि वाच्यार्थ निषेधरूप है परन्तु व्यङ्ग्यार्थ (प्रतीयमानार्थ) विधिरूप है। प्रकृत पद्य में यद्यपि वाच्यार्थ के द्वारा पथिक को निषेध किया जा रहा है परन्तु प्रतीयमान के द्वारा वह विधिरूप में है।

इसी प्रकार कहीं वाच्यार्थ विधिरूप होता है तो व्यङ्ग्य (प्रतीयमान) अनुभय रूप में होता है अर्थात् व्यङ्ग्य न तो विधिरूप में होता है ना ही निषेधरूप में। यथा च निम्न पद्य में–

व्रज ममैवैकस्या भवन्तु निःश्वासरोदितव्यानि।
मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत।।

अर्थ– (तुम) जाओ, मै अकेली ही इन निःश्वास और रोने को भोगूँ (सो अच्छा है) कहीं दाक्षिण्य (समानुरागिता) के चक्कर में पड़कर, उसके विना तुमको भी यह सब न भोगना पड़े।

इस श्लोक में नायिका का प्रगाढ़ मन्यु (दुःख) प्रतीयमान है। वह न तो गमनाभावरूप निषेध ही है और न तो कोई दूसरा विधि (विध्यन्तर) निषेध का अभाव ही व्यङ्ग्य होता है। इसलिए यहाँ प्रतीयमान अर्थ अनुभयरूप है।

इसी प्रकार कहीं वाच्यार्थ प्रतिषेध रूप होने पर प्रतीयमानार्थ अनुभयरूप होता है। जैसे निम्न पद्य में–

प्रार्थये तावत्प्रसीद निवर्तस्व मुखशशिज्योत्स्नाविलुप्ततमो निवहे।
अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासामपि हताशे।।

अर्थ– (मैं) प्रार्थना करता हूँ मान जाओ, लौट जाओ। अरी अपने मुखचन्द्र की ज्योत्स्ना से गाढ–अन्धकार को दूर करने वाली, तुम अन्य अभिसारिकाओं (के कार्य) का भी विघ्न कर रही हो।

यहाँ वाच्य प्रतिषेधरूप होने पर भी व्यङ्ग्य अनुभयरूप होने से प्रतीयमान अर्थ वाच्यार्थ से अत्यन्त भिन्न है।

इस प्रकार विषय का ऐक्य होने पर भी वाच्य और व्यङ्ग्य का स्वरूपभेद से भेद दिखाया है। इस प्रकार वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान (वस्तुध्वनि) के और भी भेद हो सकते है, यहाँ तो उनका केवल दिग्दर्शनमात्र कराया है। वस्तुध्वनि का वाच्यार्थ से भेद उपर्युक्त उदाहरणों के द्वारा दर्शाया गया। दूसरा प्रभेद अलङ्कारध्वनिरूप प्रकार भी वाच्यार्थ से भिन्न है, उसे आगे द्वितीय–उद्योत में विस्तारपूर्वक दिखायेंगे।

जैसा कि ध्वनिकार ने स्वयं लिखा है– **'अन्ये चैवं प्रकाराः वाच्याद् विभेदिनः प्रतीयमानभेदाः सम्भवन्ति। तेषां दिङ्मात्रमेतत् प्रदर्शितम्। द्वितीयोऽपि प्रभेदो वाच्याद्विभिन्नः सप्रपञ्चमग्रे दर्शयिष्यते।'**

इस प्रकार वस्तुध्वनि एवं अलङ्कारध्वनिरूप प्रतीयमान प्रभेद का वाच्यार्थ से भिन्नत्व का प्रतिपादन करके अब रसादिध्वनि का वाच्यार्थ से भिन्नत्व प्रदर्शित करते हुए कहते हैं–

तृतीयस्तु रसादिलक्षणः प्रभेदो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तः प्रकाशते न तु साक्षाच्छब्दव्यापारविष्ज्ञय इति वाच्याद् विभिन्न एव। तथा हि वाच्यत्वं तस्य स्वशब्दनिवेदितत्वेन वा स्यात्, विभावादिप्रतिपादनमुखेन वा। पूर्वस्मिन् पक्षं स्वशब्दनिवेदितत्वाभावे रसादीनामप्रतीतिप्रसङ्गः न च सर्वत्र तेषां स्वशब्दनिवेदितत्वम्। यत्राप्यस्ति तत्, तत्रापि विशिष्ट विभावादिप्रतिपादनमुखेनैवैषां प्रतीतिः। स्वशब्देन सा केवलमनूद्यते न तु तत्कृता। विषयान्तरे तथा तस्या अदर्शनात्। न हि केवलं शृङ्गारादि शब्दमात्रभाजि विभावादिप्रतिपादनरहिते काव्ये मनागपि रसवत्वप्रतीतिरस्ति। यतश्च स्वाभिधनमन्तरेण केवलेभ्योऽपि विभावादिभ्यो विशिष्टेभ्यो रसादीना प्रतीति। केवलाच्च रसाभिवानादप्रतीति।

तस्मादन्वयव्यतिरेकाभ्यामभिधेयसामर्थ्याक्षिप्तत्वमेव रसादीनाम्। न त्वभिधेयत्व कथञ्चित्। इति तृतीयोऽपि प्रभेदो वाच्याद् भिन्न एवेति स्थितम्। वाच्येन त्वस्य सहेव प्रतीतिरग्रे दर्शयिष्यते।'

अर्थ– तृतीय रसादिरूप ध्वनि का जो प्रभेद है, वह तो वाच्यसामर्थ्य से आक्षिप्त होता हुआ ही प्रकाशित होता है। अर्थात् व्यञ्जनावृत्ति से प्रतिपादित होने पर ही चमत्कार का आधान करता है, अन्यथा नहीं, रसादि शब्द से वह कदापि वाच्य नहीं हो सकता है। रसादि साक्षात् शब्दव्यापार (अभिधा, लक्षणा, तात्पर्या शक्ति) का विषय नहीं होता है इसलिए वाच्यार्थ से भिन्न ही है।

अर्थात् विशिष्ट विभावादि के प्रतिपादन के द्वारा ही रसादि की प्रतीति होती है, विभावादि शब्दाभाव में केवल रसादिशब्द द्वारा तो रस की प्रतीति नहीं होती है। संज्ञा शब्दों से वह केवल अनूदित होती है। उनसे जन्म नहीं होती है। क्योंकि दूसरे स्थानों पर उस प्रकार से वह दिखलायी नहीं देती।

इसलिए तीसरा (रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावप्रशम, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता आदि रूप) भेद भी वाच्य से भिन्न ही है यह निश्चित है।

मूलपाठः

स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छस्वच्छायायासितेन्दवः ।
त्रायन्तां वो मधुरिपोः प्रपन्नार्तिच्छिदो नखाः ।।

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व–
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।
केचिद्वाचाम् स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्
तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम् ।।1।।

बुधैः काव्यतत्त्वविदि्भः काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति संज्ञितः ,परम्परया यः समाम्नातपूर्वः सम्यक् आसमन्तात् म्नातः प्रकटितः ,तस्य सहृदयजनमनःप्रकाशमानस्याप्यभावमन्ये जगदुः ।तदभाववादिनां चामी विकल्पाः सम्भवन्ति ।

तत्र केचिदाचक्षीरन् – शब्दार्थशरीरन्तावत्काव्यम् । तत्र च शब्दगताश्चारुत्वहेतवोऽनुप्रासादयः प्रसिद्धाएव । अर्थगताश्चोपमादयः । वर्णसंघटनाधर्माश्च येमाधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयन्ते । तदनतिरिक्तवृत्तयोवृत्तयोऽपि याः कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः , ताअपि गताः श्रवणगोचरम् । रीतयश्च वैदर्भीप्रभृतयः। तद्व्यतिरिक्तः कोऽयम् ध्वनिर्नामेति ।

अन्ये ब्रूयुः –– नास्त्येव ध्वनिः । प्रसिद्धप्रस्थानव्यतिरेकिणःकाव्यप्रकारस्य काव्यत्वहानेः सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थ–मयत्वमेव काव्यलक्षणम् । न चोक्तप्रस्थानातिरेकिणो मार्गस्यतत्सम्भवति । न च तत्समतान्तःपातिनः सहृदयान्

कांश्चित्परिकल्प्य तत्प्रसिद्धया ध्वनौ काव्यव्यपदेशःप्रवर्तितोऽपि सकलविद्वन्मनोग्राहितामवलम्बते ।

पुनरपरे तस्याभावमन्यथा कथयेयुः —— न सम्भवत्येवध्वनिर्नामापूर्वः कश्चित् । कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तेष्वेवचारुत्वहेतुष्वन्तर्भावात् । तेषामन्यतमस्यैव वा अपूर्वसमाख्या–मात्रकरणे यत्किंचन कथनं स्यात् ।

किंच वाग्विकल्पानामानन्त्यात् सम्भवत्यपि वा कस्मिंश्चित् काव्य–लक्षणविधायिभिः प्रसिद्धैरप्रदर्शिते प्रकारलेशे ध्वनिर्ध्वनिरितियदेतदलीक सहृदयत्वभावनामुकुलितलोचनैर्नृत्यते , तत्रहेतुं न विद्मः । सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलंकारप्रकाराःप्रकाशिताः प्रकाश्यन्ते च । न च तेषामेषा दशा श्रूयते ।

तस्मात् प्रवादमात्रं ध्वनिः । न त्वस्य क्षोदक्षमम् तत्त्वम् किंचिदपि प्रकाशयितुं शक्यम् । तथा चान्येन कृत एवात्र श्लोकः ———

यस्मिन्नस्ति न वस्तु किंचन मनःप्रह्लादि सालंकृति

व्युत्पन्नै रचितं च नैव वचनैर्वक्रोक्तिशून्यं च यत् ।

काव्यं तद्ध्वनिना समन्वितमिति प्रीत्या प्रशंसञ्जडो

नो विद्मोऽभिदधाति किं सुमतिना पृष्टः स्वरूपं ध्वनेः ।।

भाक्तमाहुस्तमन्ये । अन्ये तं ध्वनिसंज्ञितम् काव्यत्मानं

गुणवृत्तिरित्याहुः ।

यद्यपि च ध्वनिशब्दसंकीर्तनेन काव्यलक्षणविधायिभिर्गुणवृत्ति–रन्यो वा न कश्चित्प्रकारः प्रकाशितः , तथापि अमुख्यवृत्त्याकाव्येषु व्यवहारं दर्शयता ध्वनिमार्गो मनाक्स्पृष्टोऽपि नलक्षित इति परिकल्प्यैवमुक्तम् –'भाक्तमाहुस्तमन्ये'इति ।

केचित्पुनर्लक्षणकरणशालीनबुद्धयो ध्वनेस्तत्त्वं गिरामगोचरम्सहृदयहृदयसंवेद्यमेव समाख्यातवन्तः । तेनैवंविधासुविमतिषु स्थितासु सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपं ब्रूमः ।

तस्य हि ध्वनेः स्वरूपं सकलसत्कविकाव्योपनिषद्भूतमतिरमणीय– मणीयसीभिरपि चिरन्तनकाव्यलक्षणविधायिनां बुद्धिभिरनुन्मीलित–पूर्वम् , अथ च रामायणमहाभारतप्रभृतिनि लक्ष्ये सर्वत्रप्रसिद्धव्यवहारं लक्षयतां सहृदयानामानन्दो मनसि लभतांप्रतिष्ठामिति प्रकाश्यते।।

तत्र ध्वनेरेव लक्षयितुमारब्धस्य भूमिकां रचयितुमिदमुच्यते ———

योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः ।

वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ।।2।।

काव्यस्य हि ललितोचितसन्निवेशचारुणः शरीरस्येवात्मा साररूपतया स्थितः सहृदयश्लाघ्यो योऽर्थस्तस्य वाच्यः प्रतीयमानश्चेति द्वौ भेदौ ।

तत्र वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारैरुपमादिभिः ।

बहुधा व्याकृतः सोऽन्यैः ———

काव्यलक्ष्मविधायिभिः ——— ततो नेह प्रतन्यते ।।3।।

केवलमनूद्यते पुनर्यथोपयोगमिति ।।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।

यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।।4।।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वाच्याद्वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।यत्तत्सहृदयसुप्रसिद्धं प्रसिद्धेभ्योऽलंकृतेभ्यः प्रतीतेभ्योवाऽवयवेभ्यो व्यतिरिक्तत्वेन प्रकाशते लावण्यमिवांगनासु । यथाह्यंगनासु लावण्यं पृथङ्निर्वर्ण्यमानं निखिलावयवव्यतिरेकिकिमप्यन्यदेव सहृदयलोचनामृतं तत्त्वान्तरं तद्वदेव सोऽर्थः ।

स ह्यर्थो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तम् वस्तुमात्रमलंकाररसादयश्चेत्यनेकप्रभेदप्रभिन्नौ दर्शयिष्यते । सर्वेषु च तेषु प्रकारेषु तस्यवाच्यादन्यत्वम् । तथा ह्याद्यस्तावत्प्रभेदो वाच्याद् दूरम् विभेदवान् ।स हि कदाचिद्वाच्ये विधिरूपे प्रतिषेधरूपः । यथा ———

भ्रम धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।
गोदावरीनदीकूललतागहनवासिना दृप्तसिंहेन।।

क्वचिद्वाच्ये प्रतिषेधरूपे विधिरूपो यथा ———

श्वश्रूरत्र शेते अथवा निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय ।
मा पथिक रात्र्यन्धः शय्यायामावयोः शयिष्ठाः।।

क्वचिद्वाच्ये विधिरूपेऽनुभयरूपो यथा ———

व्रज ममैवैकस्या भवन्तु निःश्वासरोदितव्यानि ।
मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत ।।

क्वचिद्वाच्ये प्रतिषेधरूपेऽनुभयरूपो यथा ———

प्रार्थये तावत्प्रसीद निवर्तस्व मुखशिज्योत्स्नाविलुप्ततमोनिवहे ।
अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासामपि हताशे ।।

क्वचिद्वाच्याद्विभिन्नविषयत्वेन व्यवस्थापितो यथा ———

कस्य वा न भवति रोषो दृष्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम् ।
सभ्रमरपद्माघ्राणशीले वारितवामे सहस्वेदानीम् ।।

अन्ये चैवंप्रकारा वाच्याद्विभेदिनः प्रतीयमानभेदाः संभवन्ति । तेषां दिङ्मात्रमेतत्प्रदर्शितम् । द्वितीयोऽपि प्रभेदो वाच्याद्विभिन्नःसप्रपंचमग्रे दर्शयिष्यते ।

तृतीयस्तु रसादिलक्षणः प्रभेदो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तः प्रकाशते ,न तु साक्षाच्छब्दव्यापारविषय इति वाच्याद्विभिन्न एव । तथा हि वाच्यत्वं तस्य स्वशब्दनिवेदितत्वेन वा स्यात् । विभावादिप्रतिपादनमुखेन वा । पूर्वस्मिन् पक्षे स्वशब्दनिवेदितत्वाभावे रसादीनामप्रतीतिप्रसंगः । न च सर्वत्र तेषां स्वशब्दनिवेदितत्वम् । यत्राप्यस्ति तत् , तत्रापि विशिष्टविभावादिप्रतिपादनमुखेनैवैषां प्रतीतिः ।स्वशब्देन सा केवलमनूद्यते , न तु तत्कृता विषयान्तरे तथा तस्या अदर्शनात् । न हि केवलशृंगारादिशब्दमात्रभाजि विभावादिप्रतिपादनरहितेकाव्ये मनागपि रसवत्त्वप्रतीतिरस्ति । यतश्च स्वाभिधानमन्तरेणकेवलेभ्योऽपि विभावादिभ्यो विशिष्टेभ्यो रसादीनां प्रतीतिः । केवलाच्चस्वाभिधानादप्रतीतिः । तस्मादन्वयव्यतिरेकाभ्यामभिधेयसामर्थ्या– क्षिप्तत्वमेव रसादीनाम् । न त्वभिधेयत्वं कथंचित् , इति तृतीयोऽपिप्रभेदो वाच्याद्विभिन्न एवेति स्थितम् । वाच्येन त्वस्य सहेव प्रतीतिरित्यग्रे दर्शयिष्यते ।

7.4 सारांश

ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की प्रथम इकाई (कारिका– 01 से 04 तक) के अध्ययन से आपने जाना कि साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थ में ध्वन्यालोक का क्या महत्त्व है। ध्वन्यालोक के कर्ता आनन्दवर्धन के कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व से भी आप परिचित हुए। ध्वन्यालोक का प्रतिपाद्य विषय काव्यस्यात्मा ध्वनि, ग्रन्थ का प्रयोजन, ध्वनिविषयक तीन विप्रतिपत्तियाँ, ध्वनिविरोधि तीन मतों का विश्लेषण, अभाववाद एवं उनके विकल्पों का निरूपण, भाक्तवाद की निरूपण, भक्ति की विवेचना, अनिर्वचनीयतावाद का निरूपण, ध्वनिनिरूपण का प्रयोजन, ध्वनिसिद्धान्त की भूमिका, वाच्यार्थ का स्वरूप, प्रतीयमानार्थ का स्वरूप एवं लक्षण, विविध उदाहरणों के द्वारा प्रतीयमान का वाच्य से भिन्नत्वनिरूपण, वस्तुध्वनि, अलङ्कारध्वनि एवं रसादिध्वनि का वाच्य से भिन्नत्वनिरूपण प्रभृति विविध विषयों का अध्ययन आपने इस इकाई में किया। आपने जाना कि ध्वन्यालोक ग्रन्थ के द्वारा किस तरह साहित्यशास्त्र की दशा एवं दिशा परिवर्तित हुई, फलतः ध्वन्यालोक युगप्रवर्तकग्रन्थ सिद्ध हुआ। इस प्रकार इस इकाई के अध्ययन से आपने ध्वनिसिद्धान्त स्थापना की पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त की है।

7.5 शब्दावली

विप्रतिपत्ति– असहमति, आप्रति, मतों का विरोध, विरोधी मत।

विश्रुत– प्रसिद्ध, प्रख्यात।

युगप्रवर्तक– युग को प्रवर्तित करने वाला।

सार्वभौम– विश्वव्यापी, समस्त विश्व में व्याप्त।

सिद्धान्त– मत, प्रमाणि तथ्य, तर्क सहित निर्णीत मत या विचार।

समालोचना– आलोचना, समीक्षा, गुणदोष की विवेचना।

गुणीभूतव्यङ्ग्य– जहाँ व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ की तुलना में कम चमत्कारी हो।

निर्विघ्न– बिना किसी विघ्न के।

चारुता– सुन्दरता, शोभा, रमणीयता।

प्रस्थान– पक्ष, पद्धति, प्रणाली, मत।

विलक्षण– अद्‌भुत, अपूर्व।

विचित्रता– सुन्दरता, मनोहर।

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ध्वन्यालोकः आनन्दवर्धनाचार्य विरचित, व्याख्याकार– आचार्य जगन्नाथपाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

ध्वन्यालोक व्याख्याकार– आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी

ध्वन्यालोक लीला संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित, आचार्य लोकमणि दहाल, भारतीयविद्याप्रकाशन, दिल्ली

संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास पी.वी. काणे, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली

ध्वन्यालोक व्याख्याकार– के.कृष्णमूर्ति, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

ध्वन्यालोक व्याख्याकार– डॉ. रामसागरत्रिपाठी, मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

काव्यशास्त्रविमर्श डॉ. कृष्णकुमार, मयङ्क प्रकाशन, कनखल, हरिद्वार

ध्वन्यालोक व्याख्याकार– डॉ. बालप्रियाटीकासमन्वित, काशी संस्कृत सीरिज, वाराणसी

ध्वनिसिद्धान्त डॉ. राममूर्तिशर्मा, अजन्ता पब्लिकेशन्स, जवाहरनगर, नई दिल्ली

ध्वन्यालोकविमर्श प्रो. माणिकगोविन्द चतुर्वेदी, अक्षरप्रकाशन, विश्वासनगर, दिल्ली

आनन्दवर्धन लेखक– प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी, मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

7.7 बोध प्रश्न

1. अभाववाद की विवेचना करें?
2. भाक्तवाद का निरूपण करें?
3. प्रतीयमान अर्थ के स्वरूप को प्रतिपादित करें?
4. वाच्य से प्रतीयमान के भिन्नत्व का सोदाहरण प्रतिपादन करें?
5. ध्वनिसिद्धान्त की पृष्ठभूमि को विस्तारपूर्वक निरूपित करें?
6. आनन्दवर्धन के कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व का निरूपण करें?
7. ध्वन्यालोक के मङ्गलपद्य की व्याख्या करें?